# क्षमा करो हे वत्स

देवेंद्र

# क्षमा करो हे वत्स

"सर सुंदरलाल अस्पताल के कैंसर वार्ड में दर्द से तड़पती छटपटाती आपकी आखिरी उम्मीद मुझसे कभी पूरी न हो सकेगी। माँ, मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दो। मैं खुद को आपकी इच्छाओं, भावनाओं और संवेदनाओं के अनुरूप नहीं ढाल सका। अगर यह अपराध है तो मुझे अपराध की काली सँकरी और अंतहीन गुफा में दूर तक अकेले जाने की अनुमति दीजिए। क्यों अब भी आपकी थकी आँखों का अँधेरा मेरा पीछा कर रहा

https://www.hindiadda.com/kshama-karo-he-vats/

है। अपने आभालोक में खींच लाने के लिए। अब मुझे डर लगने लगा है। रिश्तों की समूची अंतरंग और आत्मीय दुनिया से। मैं अपने समूचे अतीत और तमाम सामाजिक संबंधों को प्रणाम करता हूँ। जो मेरी संवेदनाओं से परे हो चुके अब उनमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं। कहाँ रह गया है संबंध वाचक संज्ञाओं का निहितार्थ। पिछले कई सालों से मैंने सिर्फ गीता को ही पढ़ा और जिया है। एक निर्मम सत्य - "मा फलेषु कदाचन।" कब्रगाह की ओर खुलने वाली संबंधों की सारी खिड़कियों में मेरे लिए इशारा और आश्वासन देती हुई रोशनी का कोई टुकड़ा नहीं रह गया है। ईश्वर और उसके नियमों में मेरी कोई आस्था नहीं रह गई है। दीवाली और होली-रोशनी और रंगों में सराबोर शहर मेरे भीतर अपना सारा अँधेरा और रंगहीनी उड़ेल देता। बचपन से ही ये त्यौहार मुझे उदास कर जाते। असंग जीवन की निर्मम तटस्थता मेरे प्राण-प्राण में समा गई है। सामाजिक संबंधों की कोई चाह नहीं। स्मृतियों और सपनों के असंख्य दंश से क्षत-विक्षत कैसा होता जा रहा है मेरा जीवन। जैसा सोचा था वैसा जी नहीं पाया और जो जी रहा हूँ उसका कोई मुकम्मल तर्क नहीं।"

**23** अप्रैल **1995**। लखीमपुर खीरी का वाई.डी. कालेज। मैं शाम को परीक्षा कक्ष में बैठा हुआ था। करीब साढ़े पाँच बजे मेरे लिए बनारस से टेलीफोन पर सूचना आई कि "**21** तारीख को रात आठ बजे अंशुल का अपहरण कर लिया गया है।"

अंशुल मेरा इकलौता बेटा। माँ के साथ गाँव पर रहता है। 16 मई को वह ग्यारह वर्ष का हो जाएगा। सूचना पाकर मेरा समूचा शरीर काँपने लगा। यह सोचकर कि गाँव पर कोई भयंकर अनहोनी हुई है। अंशुल अपहरण की यह गलत सूचना शायद मुझे मात्र घर पर बुलाने के लिए दी गई है। अंशुल का अपहरण कोई क्यों करेगा?

फिरौती के लिए अपहरण की घटनाएँ इटावा, मैनपुरी और भिंड के आसपास घटती रहती हैं। बिहार में भी इस तरह की घटनाएँ हो रही हैं। लेकिन गाजीपुर, बलिया, बनारस में फिरौती के लिए अपहरण की कोई घटना कभी नहीं सुनी गई। आठ साल हो गए डिग्री कालेज की इस नौकरी को। वेतन और व्यय का समानुपात यही रहा कि कभी एक महीने की पूरी तनख्वाह जोड़ नहीं सका। यह बात यहाँ लखीमपुर में सब जानते हैं और गाँव में भी सबको पता है। अभी-अभी पंचायती चुनाव संपन्न हुए हैं। समूचा प्रदेश अपने सीमित मताधिकार के जरिए जनतंत्र का स्वप्न देखकर खून में सराबोर हो चुका है। सरकार ने थानों को सख्त हिदायत दे रखी है कि चुनावी झगड़ों को कतई दर्ज न किया जाए। अगर किसी झगड़े का दर्ज होना बेहद जरूरी ही हो जाए तो उसका स्वरूप बदल दिया जाए। 'प्रापर्टी विवाद' अथवा 'प्रेम-प्रसंग'। कोई भी नाम दिया जा सकता है।

अभी पिछले महीने होली की छुट्टियों में गाँव गया था। अंशुल के लिए कुछ कपड़े यहीं से खरीदे थे। पत्नी ने कहा कि "वैसे भी इसके पास कपड़े अब ज्यादा हो गए हैं।"

"ठीक है। बर्थ डे पर सिलवा दीजिएगा" - मैंने कहा। मेरे पहुँचने की सूचना पाकर वह दौड़ा हुआ आता और सबसे पहले अटैची खोलकर अपना सामान देखता। "पापा, आप कितने दिनों से मेरे लिए कैरमबोर्ड खरीद रहे हैं?" उसने पूछा। मैंने कहा - "चलिए कल मऊ से खरीद लाएँगे।"

पत्नी ने कहा कि "इम्तहान करीब है। इनको दिन भर घूमने और टी.वी. देखने से फुर्सत नहीं। 'कैरमबोर्ड' आ गया तो ये पास हो चुके।"

मैंने मऊ जाकर 'कैरमबोर्ड' खरीदा और इस हिदायत के साथ कि जब मैं 'बर्थ डे' पर आऊँगा तो पहली बार आप मेरे साथ खेलिएगा। इम्तहान होने तक मम्मी की बात माननी पड़ेगी।

"अच्छा चलिए थोड़ा आपके साथ खेल लेते हैं।" उसके कहने पर मैंने थोड़ी देर 'कैरमबोर्ड' खेला। दो दिन बाद जब मैं लखीमपुर के लिए चला तो मुझे छोड़ने वह सायकिल पर मरदह तक मेरे साथ आया था। रास्ते में मैंने कहा - "इस बार जब आप पाँच पास कर लीजिए तो आपका नया नाम 'उपमन्यु' लिखवा दूँगा। मम्मी से बता दीजिएगा कि स्कूल से 'सर्टीफिकेट' लेते समय नाम बदल कर 'उपमन्यु' लिखा दें।"

उसके पूछने पर मैंने रास्ते भर उपमन्यु की पौराणिक कथा सुनाई। मरदह आकर मैंने उसकी सायकिल ठीक कराई। कुछ फल वगैरह खरीद कर देने के बाद घर जाने के लिए कह दिया। उसने कहा - "पापा, आप मुझे कभी लखीमपुर नहीं ले चलेंगे क्या?"

- "वहाँ आप किसके साथ रहेंगे। मैं तो दिन भर घूमता रहता हूँ। और फिर यहाँ मम्मी किसके साथ रहेंगी।" - मैंने बहाना बनाया। जिंदगी को लेकर एक टीस दूर तक गड़ती चली गई। - "पापा, आपकी बस आ जाए तब मैं जाऊँगा।" - उसने कहा। साँझ हो रही थी। "अकेले आपको डर नहीं लगेगा?" - मेरे पूछने पर वह हँसा - "दिन भर तो मरदह आता-जाता हूँ। इसमें डरने की क्या बात है?"

दुकान पर मैं चाय पी रहा था। मैंने दस का एक नोट थमाकर उससे कहा - "दुकान से एक पैकेट सिगरेट और माचिस लेते आइए।"

- "आप सिगरेट बहुत पीते हैं।" डिब्बी थमाते हुए उसने कहा। मैंने कहा "अब तो आप पिता की तरह बात करने लगे हैं।"

- "अच्छा बेटा एक बात बताइए। आप किसके पास सोते हैं?"

- "मम्मी के पास।" - उसने मेरी ओर हँसते हुए देखा।

- "नहीं आप यह बताइए कि आप किसकी पत्नी के पास सोते हैं?"

मैंने विनोदमयी संवाद क्रीड़ा शुरू कर दी है। उसकी आँखों में सतर्कता चमकी और वह मुस्कराने लगा - "आपकी पत्नी के पास सोता हूँ।"

- "ठीक! तब मैं भी आपकी पत्नी के पास सोऊँगा। कोई आपत्ति?"

दुकान पर बैठे लोग हँसने लगे। वह शरमा गया - "मैं शादी ही नहीं करूँगा।"

- "पापा! अगले महीने में इम्तहान है। मेरे लिए बारह रंगों वाली पेन्सिल खरीद दीजिए" - उसने फरमाइश की।

"सारा पैसा आपकी मम्मी ने ले लिया है। बस किराए के पैसे बचे हैं। आपकी सायकिल में पच्चीस रुपए लग गए। आपने मिठाई भी खाई। फल भी खरीदा। अब मम्मी से पैसा माँग कर कल खरीद लीजिएगा।" - वह चुप हो गया। मैंने पूछा - "कितने की मिलती है?"

- "दस-बारह रुपए में मिल जाएगी।" - उसने अन्यमनस्क होकर कहा। मैंने बीस का एक नोट उसे दे दिया।

पेन्सिल खरीद कर लौटते समय उसके साथ एक लड़का था। - "पापा! मैं राजू के साथ घर चला जाऊँ।"

- "हाँ चले जाइए।"

थोड़ी देर चुप खड़ा रहने के बाद बोला - "पापा! राजू को भी मिठाई खिला दीजिए।"

मैंने कहा - "राजू बेटे, तुम्हें जो मिठाइयाँ खानी है, दुकान से ले लो।"

राजू शरमा रहा था। अंशुल ने दुबारा वे मिठाइयाँ दुकानदार से माँगी जिन्हें पहले खुद खा चुका था। राजू हमारे पड़ोस का अंशुल का हमउम्र और एकमात्र घनिष्ठ दोस्त था। अक्सर राजू अंशुल के साथ या तो मेरे घर होता या अंशुल राजू के घर। जब राजू मिठाई खा रहा था तो अंशुल ने मुझसे धीरे से कहा - "यह बताइए कि मेरी पत्नी क्या आपकी माँ लगेगी?"

सुनकर मुझे हँसी आ गई।

साँझ ढलने लगी थी। अंशुल और राजू एक ही सायकिल पर काँपते हैंडिल को सँभालते हुए तेजी से गाँव की ओर चले गए। पत्नी ने कहा था - "इन्हें समझा दीजिए, बहुत तेज सायकिल चलाते हैं। किसी दिन कुछ हो जाएगा।" पश्चिमी छोर पर डूबते सूरज की उदास आभा गाँव से आखिरी विदाई ले रही थी। मैं लखीमपुर चला आया।

**9** अप्रैल को अंशुल का एक पत्र आया। लिखा था - "पापा, अबकी 'बर्डे' पर जरूर आइएगा। कुछ सामान नहीं लाना है आपको। **(**यह बात उसने मेरे द्वारा दी गई सूचना कि**,** मार्च में मिलने वाला वेतन पूरी तरह 'इनकम टैक्स' में चला गया है**,** के आधार पर लिखी थी**)** मैंने मम्मी के साथ मऊ जाकर कपड़े सिलने के लिए दे दिए हैं। दो सौ रुपए सिलाई लगेगी। बस उतना ही पैसा भेज दीजिएगा।" पत्र में कुछ और भी बातें थीं। मैंने चिट्ठी कई बार पढ़ी और अपराधबोध में डूबा देर तक अंशुल के बारे में ही सोचता रहा। अब वह धीरे-धीरे बड़ा होने लगा है।

मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि कथाकार काशीनाथ सिंह का प्रिय शिष्य होने का अवसर मुझे मिला है। इन दिनों वे मुझसे कुछ-कुछ विरक्त और नाराज रहने लगे थे। कारण कि मेरा नियमित रूप से कुछ पढ़ना या लिखना करीब-करीब स्थगित हो गया था। दशहरे की छुट्टियों में बनारस गया था। काशीनाथ जी की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह 'किताब-घर' से छपकर आया तो उसकी एक प्रति मुझे देते हुए उन्होंने लिखा -

"पहली प्रति

घोर गैर जिम्मेदार और नाकारा इनसान

कथाकार देवेंदर के लिए

अनिच्छा से।"

यह घोर गैर जिम्मेदार और नाकारा इनसान जिसका कुछ भी निश्चित नहीं। शाम को अस्सी पर मिलने के लिए कहता और वहाँ जाने पर पता चलता कि गोदौलिया पर घूम रहे हैं। अटैची सियाराम के यहाँ पड़ी है और ठहरे हैं बिरला हॉस्टल में। सुबह घर पर आने के लिए कहता और दस बजे तक इंतजार करने के बाद पता चलता कि लखीमपुर

जा चुके हैं। भीतर से माँ जी निकलतीं - "एकदम खब्तुल हवास हैं। हाय, नीना की सायकिल लेकर गए थे।" दो दिन बाद कोई लड़का बिरला हॉस्टल से सायकिल लाकर लौटा जाता। डॉक्टर साहब गोदौलिया जा रहे हैं मेरे साथ। सोफे की कुर्सियों का कवर खरीदना है। माँ जी कहतीं - "जैसा गुरू वैसा चेला। आपको और कोई नहीं मिला साथ जाने के लिए।" मैं पैसा शर्ट की जेब में रखता। वे कहतीं - निश्चित ही पैसा कहीं गिर जाएगा। डॉ. साहब से जुड़े लोगों में वे मेरे ऊपर सबसे ज्यादा विश्वास और सबसे कम भरोसा करतीं। दिनेश कुशवाह ने काशीनाथ सिंह जी को सूचना दी कि देवेंद्र जी बीस तारीख को आने वाले हैं। वे कहते - "आप अभी तक देवेंद्र जी की बातों और वादों पर भरोसा करते हैं।"

इस नाकारा इनसान को इस बात का रंचमात्र आभास नहीं कि इसका बेटा बड़ा हो रहा है। और यह अब तक उसकी पढ़ाई लिखाई की कोई व्यवस्था नहीं कर सका। पत्नी गाँव में पड़ी हैं और खुद कभी लखीमपुर, कभी बनारस, कभी दिल्ली, ग्वालियर या भोपाल। कहीं किसी लिखने पढ़ने वाले से कोई सरोकार नहीं। ले-देकर एक महेश कटारे और एक हरि भटनागर। न कोई चिट्ठी न कोई पत्री। ये दोनों भी एक साल से नाराज चल रहे हैं। साहित्यकारों की गोष्ठियों से लौटने के बाद मैं अपने को कुंठित महसूस करने लगता। अजीबोगरीब सा कुरुचिपूर्ण माहौल।

गर्मियों की छुट्टियों में ही मेरा कुछ समय बेटे के साथ बीतता था। मैं उसे लेकर बनारस चला आता। दस-पंद्रह दिन तक साथ रहता। मैं अस्सी पर बैठा हूँ। लइया और चने के साथ साहित्य की चर्चा और लोगों के निंदा प्रकरण में शरीक। एक दुकान से दूसरी दुकान और फिर तीसरी दुकान पर। अंशुल बेंच पर बैठे-बैठे ऊबने लगता - "पापा, आप चलिए न।"

- "अभी रुकिए भाई। यही तो मेरी नौकरी है" - मैं कहता। घर जाकर उसने अपनी मम्मी से कहा - "जानती हैं पापा की नौकरी क्या है। इस दुकान से उस दुकान पर बैठकर उसकी चाय पीना।" यही उसकी खुशियों के दिन होते। चाकलेट, टॉफी, मिठाई, फल, खिलौने, कपड़े। गाँव की सीमित दुनिया में उसकी छोटी-छोटी मामूली इच्छाएँ होती थीं। उसके मुताबिक बहुत पैसा खर्च हो गया पापा का। दुकान पर बैठे हुए वह ललचायी नजरों से 'थम्स-अप' की बोतल को देख रहा था - "यही एक ऐसी चीज है कि जिंदगी में कभी नहीं पिया हूँ।" उस समय वह मात्र आठ साल का था। वहाँ बैठे सारे लोग हँस पड़े। दिनेश कुशवाह ने कहा - "वाह देवेंद्र जी, आपका लड़का तो आपसे भी आगे है।" तब किसे पता था कि इसकी जिंदगी में आठ साल बहुत ज्यादा हैं। मैंने कहा - "अभी पी लीजिए।"

बहुत कोशिश के बाद भी वह 'थम्स-अप' पी नहीं सका। "पापा, आप पी डालिए।" -उसने कहा।

गाँव जाकर उसने राजू को बताया - "जानते हैं। बोतल में जो वह काला सा होता है। उससे गला जलता है।"

अस्सी से देर रात हॉस्टल की ओर लौटते हुए मैंने कहा - "आपके लिए दूध ले लूँ।"

मैंने दो पैकेट दूध खरीदा। वह अचरज से पॉलिथिन में पैक द्रव दूध को देखता रहा। जब मैंने खरीद लिया तो बोला - "दीजिए जरा छूकर देखूँ तो। यह कैसा दूध है।" वह शहरी जीवन की छोटी-छोटी चीजों को कुतूहल और जिज्ञासा से देखा करता।

सुबह-सुबह डॉक्टर साहब के घर जाते हुए मैंने पूछा - "हम कहाँ जा रहे हैं।" उसने कहा - "अपने गुरूजी के यहाँ।"

वह डॉक्टर साहब और उनकी पत्नी के पैर छूता। नीना या इति किसी के पास बेझिझक बैठ जाता। इति कहती - "भैया, आपका बेटा कितना सुंदर है। इसे गाँव में क्यों रखे हैं। बड़ा होकर ऐसे ही रह जाएगा।"

मैं कहता - "गाँव में दूध-दही है। इसकी माँ हैं। फिर ग्रामीण संस्कार भी जरूरी हैं।" मैं अपने तर्कों की तह समझता हूँ और अपराध बोध से बचने के लिए अंशुल से जुड़े सवालों को टाल जाता। तब तक वह मुन्ना और मंटू से अंत्याक्षरी खेलता। पचासों कविताएँ याद कर रखीं थीं। जब मैं घर आता तो कहता - "पापा, ऐसी कविता लिख दीजिए कि 'ण' पर गिरे। 'त्र' और 'क्ष' पर गिरे। वह अंत्याक्षरी में हमउम्रों को टिकने न देता।

मैंने मंगल सिंह से पूछा - "अपना बेटा सभी को अच्छा लगता है। पता नहीं इस वजह से या क्या है। अंशुल मुझे कुछ विलक्षण लगता है।"

उन्होंने कहा - "इसमें कुछ ऐसी चीज जरूर है जो इसे सामान्य से भिन्न बनाए रखती है।"

हिंदी विभाग की ओर जाते हुए मधुवन के पास वह आश्चर्य से चीख पड़ा - "पापा! पापा!! वो देखिए, औरत स्कूटर चला रही है।" एक लड़की मोपेड से जा रही थी। मैं हँसने लगा तो वह शरमा गया।

दस-पंद्रह दिन बीत गए थे। धीरेंद्र के साथ वह गाँव जाने वाला था। जून का महीना। चिलचिलाती हुई तेज धूप के बीच लू के बवंडर। दोपहर के दो बज रहे थे। कोलतार की सड़कें पिघलकर चट्ट-चट्ट करते हुए पैरों से चिपक जातीं। मैं लंका तक उसके साथ आया। एक दुकान पर मौसम्मी का जूस पिलाने के बाद रास्ते के लिए आधा किलो अंगूर खरीद कर दिया और कहा - "अब आप भैया के साथ घर चले जाइए।"

उसने कहा - "जरा पानी चला दीजिए।" मैंने सोचा शायद इसे प्यास लगी है। नल पर उसने अपना छोटा सा तौलिया भिगो कर निचोड़ा। मैंने पूछा - "यह आप क्या कर रहे हैं?"

- "बहुत घाम (धूप) है।" उसने तौलिया सिर पर डाल ली। फिर वह धीरेंद्र के साथ पैदल ही टेंपो तक जाता रहा। सूरज अपने प्रचंड आवेश के साथ आग बरसा रहा था। नन्हें पैरों के छोटे-छोटे डग भरता अंशुल चला जा रहा था। धूप से जलकर उसके गाल एकदम लाल पड़ गए थे। मैं खड़ा एकटक उसे देखता रहा। आँखें डबडबा गईं। दिल में घबराहट सी होने लगी। अपराध-बोध और पश्चाताप से बेचैन होता हुआ - 'धन्ये मैं पिता निरर्थक था।'

यह कोई अकेला तो है नहीं। संसार में ढेर सारे लड़के इसी धूप में चले जा रहे हैं। बेटे के प्रति यह अतिरिक्त मोह है। मैंने सिर को झटका दिया। कल मुझे दूसरे शहर के लिए जाना था। कुछ गैर-जरूरी लोगों के लिए / वक्त बर्बाद कर लेने के बाद / हम तरसते रह जाते हैं वक्त के बहुत मामूली हिस्से के लिए / तब कुछ भी नहीं रह जाता है हमारे पास / न दूसरों के लिए / न अपने लिए।

**16** मई **1984**। गोरखपुर में "सांस्कृतिक आंदोलन की दिशा" विषय पर तीन दिन का सेमिनार आयोजित किया गया था। सुबह के आठ बज रहे थे। मैंने देवव्रत सेन से कहा -"कहीं आज ही मेरी पत्नी को बच्चा न हो जाए।"

देवव्रत ने कहा **-** "तुम तो **24** तारीख बता रहे थे।"

- "मैं कोई डॉक्टर तो हूँ नहीं - मैंने कहा - अगर बेटी हुई तो उसका नाम -"दिशा" रखूँगा। मुझे बेटी की ही इच्छा थी। मैं सिर्फ एक संतान चाहता था। वह भी बेटी। बेकारी के मुश्किलों से भरे दिन थे। - 'मयूर तख्त' का उत्तराधिकारी हो ही ऐसी चाहत नहीं थी। वैसे भी यह बेटा 'एबार्शन' की दहलीज से बचकर लौटा था। एक अनिच्छित गर्भ। डॉक्टरनी को तो पहले यकीन ही नहीं हुआ कि मैं और मेरी पत्नी किसी जायज संबंध की बिना पर स्थिर गर्भ को नष्ट करने आए हैं। और जब उसे यकीन दिलाया

गया तो बिगड़ पड़ी "पहला गर्भ गिरा देने से बच्चे की संभावना हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है।"

पत्नी ने 'एबार्शन' को इनकार कर दिया। घर पर उन्होंने स्वेच्छा से यह प्रस्ताव रखा था। बेकारी के दिन थे। भरपेट भोजन के अलावा जीवन की मामूली इच्छाएँ पूरी होते ही कई महीने तक चलने वाले कर्ज में बदल जाती थीं। खरीदी हुई दवाएँ, सिरिंज, बनारस से घर तक जाने-आने का खर्च। कुल दो सौ रुपए का चपेट था। लंका की सड़क पर मैं चुपचाप चला जा रहा था। पत्नी ने भीतर के तनाव को भाँप लिया। उन्होंने कुछ कहने की कोशिश की। शायद यही कि चलिए दूसरी जगह करा लेते हैं लेकिन मैं जोर से चीख पड़ा। वहीं सारी दवाएँ सड़क पर फेंक दी। पहली और अंतिम बार पत्नी के सामने चीखा था।

गोरखपुर से लौटते हुए जब घर गया तो मरदह ही पुत्र-जन्म की सूचना मिल चुकी थी। सौर-कक्ष में दीवारों तक से तेल और अजवाइन की कच्ची गंध आ रही थी। रात का समय था। दीपक की मद्धिम लौ में मैंने पत्नी के चेहरे पर अपूर्व चमक देखी। उन्होंने मुझे बच्चे को दिखाया। पता नहीं वह जग रहा था या सोया था। मुझे कोई रुचि न हुई। बनारस पहुँचने पर मैंने बच्चे का नामकरण किया - कोलंबस।

कोलंबस - घर परिवार से सालों दूर। अपनी महत्वाकांक्षा में पगलाया। समुद्री तूफानों में घिरा एक-एक साँस के लिए तरसता। जब साथ के नाविक उसकी सनक से आजिज आकर उसे मार ही डालना चाहते थे कि तभी विश्व मानचित्र पर एक नए द्वीप ने जन्म लिया। सिकंदर से लेकर नेपोलियन और गांधी या बुद्ध दुनिया के किसी व्यक्ति की बनिस्बत कोलंबस का व्यक्तित्व मुझे ज्यादा आकर्षित करता। वह भारत की खोज में निकला था। एक तरह से उसे अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिली। दुनिया में सबसे ज्यादा भटकने वाला और असफल व्यक्ति कोलंबस है। उसकी भटकन उसकी असफलता ने जो कुछ दिया वह तब तक की पूरी दुनिया की अर्जित उपलब्धि से ज्यादा है। सोचिए, करोड़ों वर्ष से एक द्वीप, एक सभ्यता और संस्कृति हमारे पहलू में गुमनाम पड़ी रही। सफल लोगों के शब्दकोष में एक आवारे घुमक्कड़ ने उसे खोज निकाला। उन दिनों हम अपनी असफलता और अपने भटकावों को लेकर कोलंबस के बारे में सोचते और आश्वस्त होते। नामवर सिंह पर केंद्रित 'पूर्वग्रह' के एक अंक में उनकी एक कविता छपी थी -

"क्षमा करो हे वत्स आ गया युग ही ऐसा

आँख खोलती कलियाँ भी कहती हैं पैसा।"

बेटा गाँव पर आँखें खोल रहा था और बनारस की सड़कों पर टहलता हुआ मैं जब भी उसके बारे में सोचता उस समय अपने आप कंठ से ये पंक्तियाँ फूट पड़तीं।

घर गए छह महीने बीत गए थे। एक दिन रात के अँधेरे में मरदह बस अड्डे से उतर कर मैं घर गया। दालान में सबसे पहले माँ मिलीं। मेरे प्रणाम के जवाब में उन्होंने पूछा - "कहीं नौकरी का कुछ हुआ?"

यह सवाल छह महीने पहले भी उन्होंने पूछा था। मैंने कहा - "नहीं।"

- "खूब घूम लो बेटा। तुमसे भले तो मुख्तार और शेष ही निकले।" - कहते हुए माँ ऊपर छत पर चली गईं। मुख्तार और शेषनाथ हमारे गाँव के निठल्ले लड़के माने जाते थे।

उस रात मैं पत्नी के पास सोया रहा। निस्पृह, निर्वीर्य और ठंडा। बेटा मेरी बगल में था। पत्नी ने कहा - "इसके दाँत निकल रहे हैं। अब यह पापा! पापा! बोलने लगा है। मैंने उधर नहीं देखा। कमरे में अँधेरा था। मुझे नींद नहीं आई। पत्नी सो चुकी थीं। शब्दों के खूबसूरत आवरणों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए अर्थ अपनी समूची कुरूपताओं के साथ बाहर निकल रहे थे। माँ-बेटा! भाई-बहन! ममता, वात्सल्य, स्नेह, सौहार्द, रिश्ते-नाते, घर-परिवार! लैट्रिप-गू! पूरी रात भयावह घिन्न के माहौल में भयभीत और जगा हुआ मैं सुबह सबके जगने से पहले बनारस चला गया। अपनी आवारा और अराजक दुनिया में सुकून मिलता था। वहाँ मैं था और ओम प्रकाश द्विवेदी। द्विवेदी जी ने पूछा - "कोलंबस कैसा है?"

मैंने कहा - "वह मुझे खोज रहा है और मैं नौकरी। पत्नी ने बताया कि वह हँसता बहुत सुंदर से है, लेकिन मैंने उसकी हँसी नहीं देखी।" फिर हम दोनों लोग हँस पड़े। उनके हीटर पर दाल पकने के करीब थी। मैं रोटियाँ सेंकने चला गया।

बाद के दिनों में एक निश्चित आय की व्यवस्था होते ही बीच के कुछ समय पत्नी और बेटे के साथ मैं बनारस रहा। शायद अलग-अलग संस्कारों की ही बात थी। हर दिन हम लोगों के बीच तनाव बढ़ता गया। स्त्री और पुरुष के बीच आकर्षण और फिर प्रेम एक स्वाभाविक गुण है। शारीरिक संबंधों का उच्चतम रूप प्राप्त करने के बाद यह प्रेम समाजोन्मुख होने लगता है। हमारी विवाह संस्थाओं में इस स्वाभाविक प्रक्रिया का ही विरोध है। वहाँ शारीरिक संबंध पहली रात बन जाते हैं। बाद के दिनों में तरह-तरह के समझौते करते हुए हम प्रेम पैदा करने की कोशिश करते हैं। वे सुखी और सफल लोग

हैं। जो प्रेम पैदा कर लेते हैं। हम लोग ऐसा नहीं कर सके। पत्नी गाँव चली गईं और 10 मार्च 87 को लखीमपुर में मैंने नौकरी ज्वाइन कर ली।

पति-पत्नी तनाव का सबसे ज्यादा शिकार बच्चा होता है। पत्नी से हमारे रिश्ते हर स्तर पर ठंडे हो चुके थे। हम जितने भी क्षण साथ रहते एक दूसरे की जरूरतें हर संभव पूरी करते। सामाजिक और कानूनी मानदंडों से यह तय कर पाना एकदम असंभव है कि पत्नी और मेरे बीच कभी कोई तनाव रहा। विशेषकर तब से जब हम लोग अलग-अलग रहने लगे।

गाँव में लोग पत्नियों को बैल की तरह पीटते हैं और रात के अँधेरे में चुपके से दस मिनट के लिए उनके पास जाते हैं और कुत्ते की तरह संभोग करके फिर दरवाजे की अपनी चारपायी पर आकर सो जाते। वहाँ बूढ़ी औरतें अपने चरित्र का बखान करते हुए गर्व से कहा करती हैं - "सात सात बच्चे हो गए और मेरे आदमी ने मुँह नहीं देखा।"

घूस, भ्रष्टाचार, मक्कारी, दूसरे की जमीन हड़प कर जाना आदि आदि हमारे समाज का स्वीकृत यथार्थ है। ये सब हमारे चरित्र को प्रभावित नहीं करते। सिर्फ कमर के नीचे का गोपनीय हिस्सा अस्पृश्य रहकर हमारे चरित्र को तेजस्वी बनाता है। एक माँस पिंड निर्धारित करता है हमारे चरित्र को। उस मानसिक संरचना का कोई महत्व नहीं जिसके जरिए हम समाज के ढेर सारे लोगों से जुड़ते हैं। और जिसके अभाव में योनिशुचिता या पत्नी के प्रति एकनिष्ठता के सारे तर्क "असक्कम परम साधूनाम्, कुरूपम् पतिव्रता" से पैदा होते हैं। नैतिकता के इन भारतीय और अमानवीय मानदंडों पर मैंने समूचे बलगम को खखार कर थूक दिया। गाँव वालों की नजर में हम संदेहास्पद थे। अफवाहों और आशंकाओं के लिए तथ्य और तर्क जरूरी नहीं।

और यहाँ। कस्बों में डिग्री कॉलेज के प्रवक्ता को 'प्रोफेसर' कहा जाता है। मैंने इसका अर्थ लगाया "प्रो. फेस"। जो सामने वाले का चेहरा देखकर बातें करे। यहाँ पारिवारिक दायित्व का अर्थ है - कापियाँ जाँचने के लिए रजिस्ट्रार ऑफिस के क्लर्कों के सामने रिरियाना, नंबर बढ़ाना, पीठ पीछे निंदा, चाय दूसरे से पीना, कोर्स से ज्यादा एल.आई.सी. पॉलिसी और शेयर बाजार की जानकारी, नैतिकता की बड़ी-बड़ी बातें और विक्षिप्तता की हद तक 'सेक्सुअली फ्रस्टेट'। लेकिन दुनिया के किसी भी विषय पर चालीस मिनट का लच्छेदार भाषण। पारिवारिक दायित्वों और सामाजिक सरोकार की बड़ी-बड़ी बातें घर की दहलीज पर पहुँचते ही एक अँधेरी सुरंग से छिपकली की तरह चिपक जातीं। इनके पारिवारिक दायित्वों में माँ-बाप की रंचमात्र उपस्थिति पति-पत्नी के बीच कलह पूर्ण सन्नाटा खड़ा कर देती। बौद्धिक क्रीतदासों

की जबान पर वे शब्द कभी नहीं आते। जो उनके हृदय के भावों को बता सकें। बिना मेरी समूची पृष्ठभूमि जाने ये जब भी मेरे यहाँ आते पत्नी और बच्चे को लेकर लंबा प्रवचन सुना डालते। और पारिवारिक दायित्व के नाम पर इनके भीतर का डरा हुआ अथवा शातिर इनसान मुझे बहुत दयनीय लगता। सरल को जटिल और जटिल को सरल समझने वाली इस जमात में मैं रहस्यपूर्ण होता गया। लोग तरह-तरह से अनुमान लगाते।

अंशुल धीरे-धीरे बड़ा होने लगा था। मेरा वात्सल्य संवाद क्रीड़ाओं से अभिव्यक्त होता। सन 76 में इंटरमीडिएट करने के बाद मैंने गाँव छोड़ दिया। बीच के 18-19 वर्षों में दो तीन महीने बाद कभी-कभार गाँव जाता। कभी किसी से कोई रंजिश नहीं रही। इस बीच पैदा हुए लड़के जवान हो गए। ज्यादातर को मैं पहचानता तक नहीं। नई पीढ़ी और नवेली बहुएँ मुझे अंशुल के पिता के ही रूप में जानती सुनती हैं। आखिर अंशुल अपहरण की यह झूठी खबर किस खबर के एवज में मुझे बुलाने के लिए मेरे पास भेजी गई है। दिमाग में तरह तरह की आशंकाएँ उभर रही थीं, लेकिन मन के किसी एकांत कोने में भी मैं यह विश्वास नहीं कर पा रहा था कि वाकई अंशुल का अपहरण हो सकता है।

खबर मिलने के बाद मैं सबसे पहले बनारस गया। वहाँ पता चला कि अंशुल की माँ ने मऊ से बनारस फोन किया था और बनारस से फोन द्वारा यह सूचना लखीमपुर भेजी गई थी। अंशुल ही अपनी माँ का एकमात्र सहारा है? क्या यह संभव है कि उसके अपहरण के बाद वे मऊ जाकर फोन करने की स्थिति में रहें। और ऐसी भयानक स्थिति में वे मऊ तक गईं कैसे? अगर घर का कोई पुरुष सदस्य उनके साथ था तो उसने क्यों नहीं फोन किया? इसका साफ मतलब है कि अंशुल और उसकी माँ सुरक्षित हैं। बुलाने का कारण दूसरा है। एक बार मेरे मन में आया कि वापस लखीमपुर लौट जाऊँ लेकिन लोगों ने कहा कि यहाँ तक आए हो तो घर जाकर पता कर लेना ठीक है। 25 तारीख को मैं इत्मीनान से घर के लिए चला। बस से मरदह उतरने के बाद मैंने देखा कि वहाँ गाँव के काफी लोग इकट्ठे हैं। सूचना सही है। किसी ज्योतिषी के यहाँ से लौटते हुए भाभी ने मऊ से बनारस फोन किया था। पत्नी की स्थिति बहुत खराब है। अपहरण का कारण कुछ किसी की समझ में नहीं आ रहा है। 19 अप्रैल को पंचायती चुनावों का परिणाम घोषित हुआ था। भैया बी.डी.सी. का चुनाव जीत गए थे। इसके अलावा किसी रंजिश का कोई चिह्न नहीं। और यह रंजिश भी इस स्तर पर नहीं थी कि किसी की हत्या की जा सके। फिर अंशुल का अपहरण किस उद्देश्य से? मैं हतबुद्धि था। मेरी घबराहट बढ़ रही थी।

मैंने मऊ जाकर तत्काल यह सूचना 'राष्ट्रीय सहारा' और 'आज' दैनिक के कार्यालय को भेज दी। घर लौटने पर रात हो चुकी थी। जिंदगी में इतनी समस्याएँ झेली थीं लेकिन यह तो विपत्ति थी। दरवाजे पर औरतों की भीड़ लगी थी। पत्नी विक्षिप्त सी हो गई थीं। एक एक क्षण बाद मूर्च्छा आ जाती। दौरे पड़ रहे थे। एक औरत ने उन्हें बताया - "अंशुल के पापा आए हैं।"

"वे तो लखीमपुर हैं।" - पत्नी ने कहा और मुझे पहचानने की कोशिश करने लगीं। पहचान न सकीं। फिर मूर्च्छा। मैं आकर उनके पास बैठ गया।

मेरे और पत्नी के जो संबंध रहे हैं उसमें मेरी मृत्यु उनके लिए सहृय थी। लेकिन अंशुल तो उनका प्राणाधार था। मेडिकली आगे किसी बच्चे की संभावना हमेशा के लिए नष्ट हो चुकी थी। मेरी बुद्धि मेरा विवेक हतप्रभ हो गया था। अभी तक अंशुल की कोई खबर न थी। लोग थाने से लेकर ज्योतिषियों और सक्रिय, निष्क्रिय डकैतों से संपर्क साध रहे थे।

मैं सोच रहा था कि पता नहीं कैसे होगा? अपहर्ता उसके साथ कैसा व्यवहार कर रहे होंगे? खाने को कुछ दे भी रहे होंगे या नहीं? आदि आदि। जब जब पत्नी की मूर्च्छा टूटती वे अंशुल! अंशुल करके चीख उठतीं। फिर दूसरे ही क्षण मूर्च्छा। वेदना की प्राणहंता समुद्री भँवरों के बीच ऊभ-चूभ होती चेतना में घायल वात्सल्य छिन्न-भिन्न होकर तड़फड़ा रहा था। उनके रोम-रोम से अँधेरे में डूबती असहाय ममता हिचकियाँ ले रही थी। विलीन हो चुकी चेतना के चिह्न सिर्फ अस्फुट शब्दों में अंशुल! अंशुल करके बुदबुदा रहे थे। किसी स्त्री का इतना पवित्रतम, करुण और इतना असहाय रूप मैंने नहीं देखा था। "अपराधियों के इस गाँव में / कौन था सरगना? व्यर्थ हो चुके इस प्रश्न से दूर / चलकर कौन नहीं शामिल था इस हत्या में।" मैं विचलित होने लगा।

मुझसे बातें करते हुए वह तर्क का सहारा लेता और अपनी माँ से जिद का। जब वह जिद करता तो कोई बात नहीं सुनता। सिर्फ रोता और दूसरे के दोष गिनाने लगता था। मैं उसे डाँटता नहीं, सिर्फ समझाता था। वैसे भी हम लोग पूरे साल में ब-मुश्किल बीस-पच्चीस दिन साथ रह पाते थे। मेरे घर जाने पर जब, पत्नी कोई शिकायत करतीं तो वह थोड़ी देर तक उनके चेहरे की ओर देखता और फिर रोना शुरू करता। हिचकियों के बीच उसके शब्द फूट पड़ते - "मैं भी सब बात कहूँगा।"

- "बस यही इनकी आदत है" - पत्नी कहतीं - "हर बात पर रोने लगते हैं।"

- "जब मैंने उस दिन कहा था कि लैंप जला दीजिए तो ट्यूबवेल पर बाबा का खाना लेकर चली गई थीं।"

वह एक पर एक दूसरी शिकायतें करता - "उस दिन मैं पढ़ रहा था तो लैंप ले जाकर दरवाजे पर रख आईं।"

"कब**?**" - पत्नी पूछतीं।

- "जिस दिन सब लोग बैठे थे आप नहीं उठा ले गई थीं लैंप**?**"

- "एक दिन से इनकी पढ़ाई रुक गई" - पत्नी कहतीं - "बस यही इनकी आदत है। हर बात पर रोते और जिद करते हैं। गाँव में कहीं वीडियो चल रहा हो पहुँच जाएँगे।"-मैं कुछ नहीं बोलूँगी।

मैं माँ और बेटे के मध्य बीच बचाव करता - "देखिए अंशुल आप रोइए मत वीडियो देखने जाइए लेकिन इनसे पूछ कर।" और आप - मैं पत्नी से कहता - "रोज शाम को लैंप जला दिया कीजिए।"

"और मेरी सायकिल की सीट कितने दिन से टूटी पड़ी है। मैंने पैसा माँगा तो इन्होंने नहीं दिया।" अंशुल की दूसरी शिकायत।

- "चलिए मैं सायकिल बनवा दूँगा।" - मैं समझाता।

सिर्फ एक बार। गाँव के प्राइमरी स्कूल में उसने पढ़ने जाना शुरू किया था। तभी की बात है। दशहरे की छुट्टियों में मैं गाँव गया था। उसका स्कूल खुला था लेकिन वह पढ़ने नहीं गया। मैंने पत्नी से पूछा - "अंशुल स्कूल नहीं जाता है क्या?"

"महीने भर बीमार था। तभी से नहीं जाता है।" पत्नी ने बताया।

वह ट्यूबवेल की तरफ जा रहा था। मैंने पूछा - "क्यों अंशुल आप स्कूल नहीं जाते हैं क्या?"

"बीमार हूँ।" - उसने बताया और ट्यूबवेल की ओर चला गया। मैं गाँव में घूमकर थोड़ी देर बाद लौटा तो वह खेल रहा था। - "तुम पढ़ने क्यों नहीं जाते हो?" मेरे भीतर का पिता पहली बार जागृत हुआ।

"मैं बता रहा हूँ कि बीमार हूँ तो इन्हें पढ़ने की पड़ी है।" - मेरी बात पर कोई ध्यान दिए बगैर वह खेलता रहा।

पिताजी कहा करते थे कि लड़कों को तमाचे से सिर पर कभी नहीं मारना चाहिए। पैरों पर सिटकुन की मार सही रहती है। मैंने हाथ में एक सिटकुन ली। थोड़ी देर तक तो जिद से भरा वह जमीन पर लोटता रहा और चीखता रहा। लेकिन जब रोकने आने वालों को मैंने डाँट कर भगा दिया तो भयभीत, काँपता रोता हुआ वह सीधे घर के भीतर गया। अपना बैग उठाया और स्कूल की तरफ भागा। जिस शारीरिक बनावट और लाड़ प्यार के आधार पर बच्चे सुकुमार माने जाते हैं उसमें वह सब कुछ प्रचुर था। घर और स्कूल के बीच दुकान तक मेरी सिटकुन उसके पैरों पर बरसती रही।

"जब तक तू रोना बंद नहीं करेगा तब तक मार पड़ेगी।" - मैंने चेतावनी दी। रुलाई रोकने की कोशिश में उसका कंठ करुण हिचकियों से भर गया। मैं जब तक गाँव रहा उसने मुझसे बात नहीं की। वह मुझसे डरता रहा। पत्नी ने बताया कि उसके पैरों पर सिटकुन के काले-नीले निशान उभर आए हैं। जब वह नल पर नहा रहा था तो मुझे वे निशान दिखाई दिए। मैंने उसे बुलाया - "बेटे इधर आइए।"

वह आया तो मैंने पूछा - "बेटे मैंने ज्यादा मार दिया था न। देखिए अभी तक निशान हैं।" वह फफक-फफक कर रोने लगा।

अपहर्ताओं के चंगुल में मेरा मन उसके कंठ की उन्हीं करुण हिचकियों की आशंका में विचलित हो जाता।

घर पर सब लोग सो गए थे। मुझे नींद नहीं आई। बाहर दरवाजे पर कुर्सी डालकर बैठा रहा। सुबह के तीन बजे दवा से थोड़ी नींद ले लेने के बाद पत्नी जगीं और उठकर बाहर जाने लगीं। उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। मैंने उन्हें पास जाकर पकड़ लिया - "कहाँ जा रही हैं आप?" मैंने पूछा।

- "पेशाब लगी है।"

मैं उन्हें पकड़े हुए साथ-साथ गया। लौटकर वे मेरी कुर्सी के पास पड़ी चारपायी पर बैठ गईं।

- "आप सोए नहीं थे क्या?" उन्होंने पूछा।

- "नहीं नींद नहीं आ रही है।" - मैं दूसरी ओर देखता रहा।

- "हम लोगों ने किसका क्या बिगाड़ा था?" - पत्नी ने कहा और उनकी आँखें डबडबा गईं। मैं उनके पैरों की उँगलियाँ चिटकाने लगा और कहा - "अभी रात है सो जाइए।" उन्होंने एक लंबी साँस ली और कुछ सोचने लगीं।

दूसरे दिन **26** अप्रैल को अंशुल अपहरण की खबर मोटी हेडिंग्स के साथ 'आज' दैनिक अखबार में छपी। मैंने सोचा कि शायद पुलिस इस मामले को गंभीरता से ले और तत्परता बरते। क्योंकि अब तक तो तफ्तीश के नाम पर एक दिन एक कांस्टेबुल गाँव में आया था। अंशुल को **21** तारीख की रात गाँव के ही दो हमउम्र लड़के घर से बुलाकर ले गए थे। सामान्य दिनचर्या में आठ बजे रात को दो लड़कों का घर पर आना कोई ऐसी बात न थी कि कोई ध्यान दे। इससे बहुत देर रात तक अंशुल स्वतः गाँव के दूसरे घरों में आता-जाता था। कांस्टेबुल ने जब दस-पंद्रह लड़कों को बुलाकर इस बाबत पूछा तो उन घरों के लोग हमारे घर से दुश्मनी मान बैठे थे। उन लोगों ने थाने पर जाकर यह बयान दे दिया कि घर वालों ने खुद ही लड़के को छिपाया है और इस तरह पंचायती चुनाव की रंजिश का बदला ले रहे हैं। बाद में यही लोग दलील देते थे कि चुनावी रंजिश इस स्तर पर नहीं थी कि अंशुल का अपहरण या हत्या की जा सके। लेकिन तब क्या इस स्तर पर थी कि अंशुल को माध्यम बनाकर गाँव वालों को झूठे मुकदमें में फँसाया जाए? उसके बाद से मरदह थाना भाँग और धतूरे के बीच खर्राटे लेता रहा। **26** तारीख को मैंने थाने पर जाकर अपहरण की घटना दर्ज करानी चाही तो थानेदार ने कहा कि "आपको मुकदमा दर्ज कराना जरूरी है कि बच्चे को पाना। मैं अपने ढंग से काम करूँगा।" मैंने कहा - "आप मात्र मेरे अप्लीकेशन को रिसीव कर लें।" लेकिन दीवान ने अप्लीकेशन नहीं ली। लापता अंशुल को छः दिन बीत रहे थे।

देर रात लौटने के बाद सुबह हल्की सी नींद लगी थी। पत्नी तख्त पर मेरे पास आकर बैठी तो नींद खुल गई। उन्होंने कहा - "आप सोए हैं। ये देख लीजिए" **(**उनके हाथ में सुल्तानपुर के किसी ज्योतिषी का पता लिखा कागज था**)** बोली "चले जाइए। ये बहुत सही सही बताते हैं।" समूचा गाँव ही षड्यंत्रकारियों के गिरोह में तब्दील हो चुका था। रोज नई-नई अफवाहें थाने को मुहैया कराई जा रही थीं। मैंने पत्नी से कहा - "आज शाम को चला जाऊँगा।" मेरे आने से उन्हें भरोसा था।

**27** अप्रैल को मैंने बनारस जाकर मित्रों को सारी बातें बताईं। 28 अप्रैल को साहित्यकारों, पत्रकारों का एक प्रतिनिधिमंडल काशीनाथ जी के साथ डी.आई.जी. चमन लाल से मिला। उन्होंने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनी। मेरे सामने ही गाजीपुर एस.पी. को सख्त हिदायत दी। स्पेशल टीम गठित करने के लिए कहा और कुछ व्यक्तियों के नाम पते बताकर कहा कि इनसे पूछताछ करो। उन्होंने यह भी कहा कि

मरदह का थानेदार और हेड मुहर्रिर संदेह के घेरे में हैं। एस.पी. को इतनी बातें बता लेने के बाद चमन लाल जी ने हमसे कहा कि "आमतौर पर गुमशुदगी की कोई रपट दो दिन बाद अपहरण में तब्दील कर दी जानी चाहिए। दरोगा ने ऐसा किया नहीं। इससे साफ जाहिर है कि वह जान बूझ कर मामले को दबा रहा है। चमन लाल जी ने एस.पी. से यह कहते हुए कि मरदह थानेदार को इस मामले से अलग रखा जाए, अंतिम चेतावनी दी - "यह टेस्ट केस है। बच्चा किसी भी तरह मिलना चाहिए।"

शाम को पुलिस की तीन गाड़ियाँ आईं। एडीशनल एस.पी., देवेंद्र चौधरी के नेतृत्व में स्पेशल टीम गठित कर दी गई थी लेकिन एस.पी. ने मरदह के थानेदार को, जो स्पष्टतः अधिकारियों और अपराधियों के बीच, बिचौलिए की भूमिका निभा रहा था, मामले से पृथक नहीं किया।

दो तीन दिनों तक चलने वाली पूछताछ में पुलिस तत्परतापूर्वक अपराधियों से निर्देश लेती रही। डी.आई.जी. के सख्त निर्देश पर भी उसे कुछ करते रहना जरूरी था, सो चौधरी ने पुलिस की टीम लखीमपुर भी भेजी। पुलिस वाले यहाँ आकर सबसे मिले। पुलिस के लिए प्रेम और विरोध एक आपराधिक वृत्ति है इसलिए उन्होंने शहर में मेरा प्रेम तलाश किया। मेरे विरोधी खोजे। एस.पी. गाजीपुर इस बात से बेहद रंज थे कि जिले में उन जैसा जिम्मेवार अफसर होते हुए भी मैं किस गरज से डी.आई.जी. से मिला। अपराधियों द्वारा वे आश्वस्त थे कि लखीमपुर का मेरा मकान घर में तब्दील हो चुका है। वहाँ एक औरत हमारे गाँव के राजेंद्र सिंह की रिश्तेदार है। उसकी एक छह साल की लड़की भी है। उसी लड़की के हित में राजेंद्र सिंह ने यह घटना की है।

लखीमपुर आकर पुलिस वालों ने एक खूब ऊँचे बाँस पर हंडिया चढ़ाई और नीचे भीगे कोयले को रखकर उसे पुआल की आँच से सुलगाते रहे। नाक से पानी बहने लगा। आँखें लाल हो गईं। खिचड़ी नहीं पकी। उन्होंने लौटकर गाजीपुर एस.पी. को सूचना दी कि हुजूरे आला! हमने वहाँ सबसे भेंट की। कोऑपरेटिव बैंक के मैनेजर से मिले। कालेज के अध्यापकों से मिले। वहाँ पढ़ने आने वाले लड़कों से मिले। चाय के दुकानदार और कूड़ा-करकट रद्दी बीनने-बेचने वाले सबसे मिले। हमें शहर में कोई छह साल की लड़की नहीं मिली। सभी कहते हैं कि फक्कड़ आदमी हैं। किसी से कुछ लेना-देना नहीं। कहानियाँ किस्से लिखते हैं। लिखते कम घूमते और बतियाते ज्यादा हैं। देर रात तक घूमने की आदत है।

जबकि पुलिस वालों को मिल सकता था। उन्हें प्रेम भी मिल जाता और विरोध भी। निर्विवाद और निष्पक्ष होना मेरी नजर में अपराधों का मूक हिस्सेदार होना है। पुलिस

वाले सिर्फ इतना करते कि किसी रिक्शे-ठेले वाले को पकड़ते। उसमें नीचे के रास्ते पेट्रोल डालते। यह कतई जरूरी नहीं कि उस आदमी ने मेरी शक्ल देखी ही हो। पेट्रोल जब जाँघिये के नीचे जाता है तो सब कुछ मालूम हो जाता है। - "इंग्लैण्ड की महारानी का खरगोश पास के घने जंगल में कहीं भाग गया था" - लखीमपुर बार एसोसियेशन के सचिव शशांक यादव एक किस्सा सुनाया करते हैं - "उसे ढूँढ़ने के लिए यू.पी. पुलिस की एक टीम बुलाई गई। पुलिस वाले खरगोश को खोजते हुए तीन दिन से लापता हो गए थे। बाद में महारानी अपने अंगरक्षकों समेत पुलिसदल को खोजती जंगल में गईं। उन्होंने देखा कि एक पेड़ से बंधा लंगूर लहू-लुहान पड़ा है। उसकी नाक और आँखों से खून रिस रहा है। पीछे एक खूँटा ठोंक दिया गया है। पुलिस के तीन जवान उसे बुरी तरह पीट रहे हैं। लंगूर कुछ बोलना चाहता है लेकिन आखिरी साँस के साथ उसके गले से सिर्फ गुर्र-गुर्र की आवाज भर आ रही है। वह हाथ जोड़कर अपने प्राणों की भीख माँग रहा है।

महारानी ने देखा कि वहाँ चारों तरफ देसी शराब की दुर्गंध फैल रही है। पास में ही कुछ आदिवासी लड़कियाँ अपने खून सने कपड़ों के साथ अधनंगी मरी पड़ी हैं और कुछ कराह रही हैं। उनके गुप्तांग जख्मी हैं और शक्ल भारतमाता की शक्ल से काफी कुछ मिलती-जुलती है। महारानी भय से काँपने लगीं। उन्होंने पूछा तो पुलिस के एक जवान ने माथे का पसीना पोंछकर बीड़ी सुलगाई और बोला - "ये लोग इसे लिए जा रही थीं। आप बस थोड़ी देर और ठहरें अब यह साला कबूलने ही वाला है कि मैं ही महारानी का खरगोश हूँ। फिर हम जल्दी-जल्दी मामले को निबटा देंगे। आप बस इतना ध्यान रखें कि कोई फोटोग्राफर, कोई प्रेस वाला इधर न आने पाए।"

समय बीतता जा रहा था। मेरे लिए सर्वाधिक आश्चर्यजनक यह रहा कि डी.आई.जी. के स्पष्ट और सख्त निर्देश के बावजूद नीचे के अधिकारियों ने उन नामों को छुआ तक नहीं जिन्हें चमन लाल ने बताया था। मरदह थानाध्यक्ष की भूमिका भी यथावत बनी रही।

पुलिस विभाग का उड़नदस्ता जो 28 अप्रैल को गाँव में अपनी ताम-झाम और आबा-काबा के साथ आया था वह फिर कभी नहीं आया। रोज दिन में मरदह थाने का कोई एक सिपाही आता और गाँव से किसी एक आदमी को बुलाकर थाने तक ले जाता। थोड़ी देर बाद वह आदमी लौट आता। सब कुछ एक प्रहसन की तरह चल रहा था। ठंडा और निर्जीव।

सन **95** की रिकार्ड गर्मी। सुबह से देर रात तक पूरे पूरे दिन भूखे प्यासे रहकर 18-20 घंटे स्कूटर चलाते हुए किसी ढाबे पर सूखी रोटी, आध घंटे की मटमैली नींद के सिवा कुछ भी मयस्सर न था। कभी कभी मैं सोचता कि संकट के दिनों में काम के लिए शरीर कहाँ बचाए रखता है अतिरिक्त ऊर्जा। धूल सने बाल, आँखों में कीचड़, बेतरतीब दाढ़ी, तीन दिन से ब्रश नहीं किया, दौड़ते चले जा रहे हैं बदहवास। बगल से कोई टैक्सी, कोई जीप गुजरती तो लगता सिर निकाल कर अंशुल चीख पड़ेगा - पापा! बेवजह उस जीप का पीछा करते स्कूटर की गति बढ़ जाती। पीछे बैठा हुआ आदमी कहता धीरे चलाइए। किसी कस्बे या शहर की सड़क पर खड़े हैं। आँखें गलियों की ओर लगी रहतीं -शायद कहीं से भागता दौड़ता मिल जाए।

आज, दैनिक जागरण, सहारा, पूर्वांचल संदेश जैसे छोटे-बड़े सारे अखबार रोज-ब-रोज गाजीपुर पुलिस प्रशासन की तफ्तीश ले रहे थे। ऐसी घटनाएँ तो रोज घट रही हैं, लेकिन अखबार वाले विभाग की ऐसी छीछालेदर नहीं करते। एस.पी. गाजीपुर ने मेरे से संबंधित एक बेहूदा मौखिक बयान जारी किया। किसी विशेष अखबार ने उसकी नोटिस नहीं ली तो वे और भन्नाए। एक पत्रकार से उन्होंने शिकायत की - "आपको मेरा पक्ष भी तो छापना चाहिए।"

पत्रकार ने सवाल किया - "सारे अधिकार और सारी शक्ति आपके पास तो है। क्या लड़के को बरामद करने के अलावा भी आपका कोई पक्ष है।"

वह हें हें करता रहा - "नहीं, आप लोग सारा दोष पुलिस को दे रहे हैं।"

गाँव वालों की स्थिति यह थी कि जब भी कोई आदमी दो घंटे मेरे साथ कहीं जाता वह इतना जरूर समझाने की कोशिश करता कि अमुक व्यक्ति इसमें जरूर है। सब अपने-अपने पुराने हिसाब इस घटना में चुकता कर लेना चाहते थे। खबर मिलने के साथ ही लखीमपुर से वर्मा जी आ गए थे और मंगल सिंह भी। इनके अलावा स्वतंत्र होकर मैं कहीं न तो बैठ पाता था न बातें कर पाता। एक दिन मैं और मंगल सिंह सुबह-सुबह मरदह की ओर जा रहे थे। हमारे ही गाँव के एक आदमी ने बगल वाले गाँव के आदमी से कुछ कर्ज ले रखे थे। हमारे ठीक आगे चल रहे उस आदमी को रोक कर दूसरे आदमी ने अपना कर्ज माँगा तो वह बोल पड़ा - "भैया, इस समय विपत्ति पड़ी है। बारह दिन हो गए घर में खाना नहीं बना। औरतों की हालत देखी नही जाती है। कुछ समझ में नहीं आता। लड़के का बाप पंजाब की सीमा पर है, अभी तक आया नहीं।" मैं मात्र उससे बीस फीट पीछे था। वह मुझे पहचानता नहीं था। लखीमपुर को वह कहीं पंजाब के ही इर्द-गिर्द मान बैठा था। अपने कर्ज की वसूली से बचने के लिए उसने ऐसा

बहाना बनाया। दूसरे आदमी को पैसा माँगने का बेहद अफसोस हुआ। सांत्वना के स्वर में उसने पूछा - "अभी तक लड़के की खबर नहीं लगी। फिर उसने उसे कुछ ज्योतिषियों के नाम गिनाए। हम अपनी हँसी रोक न सके। हर स्तर पर लोग इस घटना को भुना रहे थे। गाँवों के सामाजिक ढाँचे के भीतर निरंकुशता और स्वार्थपरता रोम-रोम में रची बसी होती है। हमारी भागदौड़ से बेखबर दुनिया अपनी गति से चली आ रही थी।

तीन मई की रात करीब साढ़े दस बजे मैं और मंगल सिंह मऊ से लौटे। उस दिन बाजार में एक खौफनाक सन्नाटा पसरा हुआ था। एक लड़का हमें देखकर दौड़ता हुआ आया और बोला - "जल्दी घर जाइए। दीवाल पर कोई कागज चिपका हुआ है।" हमारी धड़कनें बढ़ गईं। मैंने सोचा शायद फिरौती की रकम माँगी गई हो। हम बहुत तेज स्कूटर चलाते हुए घर गए। पत्नी फटी आँखों से सब कुछ देख रही थीं। औरतों की भीड़ लगी थी। लड़कों में सिर्फ शैलेंद्र दरवाजे पर था। उसने पर्चे का मजमून बताया जिसमें प्रेम भैया को संबोधित करते हुए लिखा था कि "तुम्हारे अंशुल को सूर्यमुखी के खेत में मारकर फेंक दिया गया है।"

पुलिस की गाड़ी से तेज रोशनी खेत के ऊपर फेंकी जा रही थी। गाँव के बहुत सारे लोग टार्च लेकर खेत में चारों ओर खोज रहे थे। एक जगह ताजी खोपड़ी, जबड़े के दाँत और कुछ हड्डियाँ मिलीं। खोपड़ी में माँस का नामोनिशान तक नहीं था। उससे हल्की गंध आ रही थी। यह एक बच्चे की ही खोपड़ी है। मैंने खोपड़ी हाथ में उठाई। सुनहले बालों और बेहद खूबसूरत चेहरे वाला अंशुल ऐसा हो गया। वाचाल आँखों के पास विकृत गड्ढा भर था - "पापा, चलिए अब आपसे अंत्याक्षरी खेलेंगे।" - दो साल पहले उसने कहा था।

"चलिए आप शुरू करिए" - मैंने कहा। हम लोग पैदल मरदह की ओर जा रहे थे।

उसने शुरू किया - अंतिम अक्षर 'म' पर गिरा कर।

मैंने कविता पढ़ी -

"मंगल है भगवान की कृपा रहे सर्वत्र,

इस अंत्याक्षरी में मुझको मिले विजय का पत्र।"

नास्तिक बाप ने बेटे के खिलाफ भगवान से विजय की कामना की।

अंशुल हँसा -

"त्रास हरो भगवान भक्त का हे स्वामी सर्वज्ञ,

तुम्हें सिराहूँ किस तरह बुद्धिहीन अल्पज्ञ।"

शब्दों का उच्चारण वह सही नहीं कर पा रहा था। लेकिन बाप और बेटे ने एक ही पाठशाला में साथ-साथ पढ़ाई की थी। कविताओं के अंत कभी 'त्र' पर होते, 'ज्ञ' पर होते या 'क्ष' पर। उसने 'ण' पर गिराया। कुछ देर तक सोचने के बाद मैंने कविता पढ़ी -

"ण अक्षर जब पणिनि को भाया नहीं,

शब्द उन्होंने कोई बनाया नहीं।"

- "पापा, जरा इस कविता को लिखा दीजिएगा।" उसके पास 'ण' पर कोई कविता न थी।

मेरी आँखें डबडबा गईं। मैंने खोपड़ी हाथ में ली और सोचा एक बार चूम लूँ। लेकिन लोगों ने रोक लिया। मैं चुपचाप खेत के बाहर चला आया।

मैंने दरोगा से थका हारा प्रश्न किया - "आपने अपने ही डी.आई.जी. के बताए नामों को एक बार भी पकड़ा क्यों नहीं?"

"मुझे उनके बारे में कोई सूचना नहीं है।" उसने सफाई दी।

- "लेकिन डी.आई.जी. ने मेरे सामने एस.पी. गाजीपुर को वे नाम फोन पर बताए थे।"

- "एस.पी. साहब का अपना इंटरेस्ट होगा।" - दरोगा ने अनभिज्ञता जाहिर की।

- "अच्छा आपने दीवाल पर चिपके कागज का फिंगर-प्रिंट लिया? गाँव के ही किसी आदमी ने चिपकाया होगा?" मैंने पूछा।

- "अब इससे क्या होगा डॉक्टर साहब?" दरोगा मुझे समझा रहा था।

कागज एक लड़की के बताने पर सबसे पहले पत्नी ने पढ़ा था। उस मानसिक स्थिति में भी उन्होंने कागज को छुआ नहीं था। लेकिन मरदह के थानाध्यक्ष ने उसे नोचकर फिंगर-प्रिंट की सारी संभावना नष्ट कर दी थी।

चार मई को दिन के समय जब खेत के भीतर जाकर लोगों ने खोजा तो उसके पैंट, चड्डी, बनियान, फटा शर्ट और कीचड़ लगा चप्पल तथा कुछ और हड्डियाँ, सिर के बाल आदि अलग-अलग जगहों से मिले। फंदे में बनी एक रस्सी भी थी। शेष बहुत सारी हड्डियाँ नहीं मिलीं। हत्या किसी घर में की गई थी। उसे सिर्फ सूरजमुखी के खेत में फेंका गया था। क्योंकि गाँव और सड़क से एकदम सटे उस खेत में किसी ने दुर्गंध तक नहीं महसूस की थी। अंशुल को बहुत दूर पैदल ले भी नहीं जाया गया होगा, क्योंकि उसका अपहरण रात के आठ बजे किया गया था। गर्मियों और शादी-बारात के इस मौसम में इस वक्त तक सारा गाँव चहलकदमी करता रहता है। निश्चित ही एकदम पड़ोस का कोई घर इस्तेमाल किया गया। और ऐसा घर जहाँ सदस्य कम हों और पड़ोसियों का आना जाना न हो। रवींद्र सिंह का घर इसके लिए उपयुक्त न हो सकता था। लेकिन गाजीपुर एस.पी. ने जो टीम बनाई थी उस टीम ने एक भी घर की तलाशी नहीं ली। पैसा खाने और खरचने के अलावा उस टीम के वरिष्ठ सदस्यों ने कुछ भी नहीं किया। अपराधियों ने सब कुछ निश्चिंतता पूर्वक किया और अपनी सुविधानुसार लाश भी अपराधियों ने ही बरामद कराई।

उसी दिन पुलिस ने गाँव के कुछ लोगों को गिरफ्तार किया। वे गिरफ्तारियाँ कितनी सही हैं कितनी गलत? मेरे लिए यह बता पाना कतई नामुमकिन है। अंशुल की इस हत्या से प्रत्यक्षतः किसी को कुछ हासिल न होगा। फिर भी अंशुल की हत्या हुई है। गाँव के ही किसी आदमी ने की है यह भी तय है। निकटतम पड़ोसियों की भूमिका असंदिग्ध है। बिना किसी विशेष दुश्मनी के भी पड़ोसी के बैलों को जहर खिला देना, खेत में आग लगा देना, किसी लड़की की तय शादी को, अपना पैसा खर्च करके जाना और चुपके से बिगाड़कर चले आना जैसी आदि-आदि घटनाओं से प्रत्यक्षतः किसी को कोई लाभ नहीं होता। ठहरी हुई जिंदगी की जो क्रूर मानसिकता गाँवों में होती है, उसी के परिणाम स्वरूप ये घटनाएँ गाँवों की आम प्रवृत्ति हैं। इसीलिए यह कहना कि किसी को क्या लाभ मिलेगा पर्याप्त नहीं है। दो व्यक्तियों के झगड़े का लाभ उठाकर तीसरा व्यक्ति भी ऐसा काम गाँवों में खूब करता रहता है जिससे दोनों पक्ष मरें, कटें। और कुछ ठलुवों के खाने-पीने की व्यवस्था बनी रहे। बच्चों की जघन्यतम हत्याएँ करने वाले अमूमन कम उम्र के अपराधी होते हैं।

दुख अपने गहनतम रूप में पहुँचकर आत्मा पर पत्थर की तरह जम जाता है। विरेचन के लिए आँसुओं की भूमिका समाप्त हो जाती है। लंबी-लंबी साँसें खींचती लगभग दौड़ती गिरती सी पत्नी मेरे साथ खेत तक गईं। उन्होंने पैंट, चप्पल, बनियान फटी चड्डी और खून तथा मिट्टी में सने शर्ट देखे। उन्होंने हड्डियाँ भी देखीं। उस दिन वे

रोईं नहीं। गाँव वालों की भीड़ लगी थी। पत्नी ने चीखकर चूड़ियाँ निकालीं और सबके ऊपर फेंक दीं। उन्होंने मरदह के दरोगा को पूछा, जिसने अपहरण की सूचना दर्ज नहीं की थी। दरोगा वहीं था, मैंने कहा - "उसे गिरफ्तार कर लिया गया है।" वे बैठ गईं।

उन्होंने मुझे कसकर पकड़ा और पूछा - "आप बदला लेंगे न?"

मैंने कहा - "नहीं।"

दिन के बारह बज रहे थे। जल रहे सूरज की छाया में अंशुल के क्लास के छोटे-छोटे लड़के इम्तहान देकर लौट रहे थे। एक लड़का खड़ा होकर वहीं हड्डियाँ देखने लगा। उसके हाथ में कलम और पटरी थी। वह स्कूल ड्रेस पहने था। पत्नी उसे देखती रहीं और अचानक उठकर उसकी ओर दौड़ीं। वह लड़का डरकर बहुत तेज भागा। पी.ए.सी. बुला ली गई थी। गाँव का समूचा माहौल अजीबोगरीब ढंग से खूँखार और भयावना हो गया था। हर सामने वाला आदमी संदेहास्पद लगता। एक दिन एक चार साल का बच्चा गली की ओर जा रहा था तो उससे चार साल बड़ी उसकी बहन घर में से दौड़ती हुई निकली और उसे भीतर पकड़ ले गई - "कहाँ जा रहे हो?" - वह चीख रही थी - "गाँव वाले लड़के मारकर खा रहे हैं।" दिन में भी कोई लड़का घर के बाहर नहीं निकलता। पढ़ने जाने वाले लड़कों के साथ कोई न कोई बड़ा आदमी जरूर होता था।

23 अप्रैल से लगातार रात दिन की भागदौड़। शरीर का हर हिस्सा दर्द से ऐंठ रहा था। पान, तलब, बीड़ी, सिगरेट के मारे अपने ही मुँह से घिनौनी बदबू आ रही थी। ब्रश, स्नान, दाढ़ी, बाल, दो हफ्ते हो गए आईना नहीं देखा था। गाजीपुर, मऊ, बनारस का लगातार चक्कर। घर वालों की दशा इससे भी बहुत बदतर थी। प्रचंड गर्मी, धरती आवाँ की तरह जल रही थी। कोलतार की सड़कों से पसीना रिस रहा था। बनारस पहुँचा। प्यास लगी थी। सियाराम जी अपने स्वभाव के विपरीत बेहद गुस्से में थे। उन्होंने बताया - "हद है नीचता की। कल आपके मित्रगण अस्सी पर विगत रात आप द्वारा रचाई गई शादी पर प्रवचन झाड़ रहे थे।" नपुंसक चरित्र हत्याओं का समूह अपनी प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न भूमिका में सक्रिय और तत्पर था। मित्र बन कर ही किसी ने अंशुल की हत्या की थी। ये लोग भी मेरे मित्र थे। इस समय ये मेरे सामने छिन्न-भिन्न पड़ी बेटे की अस्थियाँ थीं और माथे पर लाश हो चुकी पत्नी को बचाने की जिम्मेवारी। लेकिन मेरे मित्रगण हत्या, प्रेम-प्रसंग, बलात्कार आदि की सनसनीखेज तस्वीरें बनाने में मशगूल थे। ये लोग वर्षों मेरे साथ रहे हैं। मेरे बारे में उनकी सोच यही थी। कहाँ-कहाँ सफाई दूँ? किस-किस से झगड़ा करूँ? प्रसादजी का एक प्रिय शब्द है - 'अकिंचन।' असहायता और अपमान के बोझ से तिल-तिल टूटता

बिखरता मैं माथा पकड़ कर लंका की सड़क पर बैठ गया। बाद में पता चला कि अस्सी वाली घटना का संबंध हिंदी विभाग में होने वाली नियुक्तियों से था। मित्रों। लिए रहिए हिंदी विभाग में अपना वर्चस्व। हमारे पास तो जो है वही टूट-टूट कर बिखर रहा है। सियाराम जी खामोश थे। उन्होंने कहा - "हद दर्जे की असंवेदनशीलता है।" मेरे मन ने कहा - "विपत्तियाँ मार नहीं डालेंगी हमें / मुट्ठी भर की दुनिया में / हम फिर मिलेंगे आप से / फिलहाल तो - "रहिमन चुप है बैठिए देखि दिनन को फेर" मुकदमे के सिलसिले में मुझे तुरंत घर लौटना था।

थाने की बाउंड्री में एक तरफ उपेक्षित सी जगह थी। सूखी हड्डियों में तब्दील हो चुका अंशुल एक सफेद कपड़े में सील करके वहीं रख दिया गया था। मटमैले कागज के चिर-परिचित हर्फों में ठंडे और बेजान हो चुके कुछ शब्द उसकी बिना पर न्याय माँगने गाजीपुर कचहरी में भेज दिए गए। सी.ओ. त्रिपाठी जी पुलिस महकमे में एकमात्र आदमी थे। बाँदा के पास कर्वी के रहने वाले। घरेलू माहौल साहित्यिक रहा है। आफिस में मैं उनके सामने बैठा था। उन्होंने बताया - "मेरी एक टीम लखीमपुर गई थी। आपको सब लोग एक साहित्यकार के रूप में जानते हैं। यहाँ शहर में भी बहुत से लोग आपको नाम से जानते हैं।"

- "कैसा साहित्यकार! कुल दो-तीन कहानियाँ लिखी हैं" - मैंने अरुचि से कहा। फिर देर तक वे समाज के बारे में, पुलिस विभाग के बारे में, और अपने बारे में बातें करते रहे। मुझे लगा कि नीचे के मातहतों और ऊपर के अधिकारियों के बीच त्रिपाठी जी मुझसे ज्यादा लाचार हैं। "एक कांस्टेबुल तक किसी मंत्री का खूँटा पकड़ कर बैठा है।" - उन्होंने बताया।

इस देश की न्यायपालिका प्लेटो के 'आदर्श-राज्य' का व्यावहारिक यथार्थ है, जहाँ नैतिकता का निरंकुश सम्राट तलवार के बल पर कवियों को लगातार बहिष्कृत और अपमानित करता रहता है। समय ने नैतिकता का कोट काला कर दिया है। और जज साहबान! आप मुझसे बार-बार अपराधी की सच्ची शिनाख्त माँगते हैं। हम कहाँ से वे गवाह लाएँगे जिन्होंने हत्या करते देखा हो। अगर यही होता तो हत्या क्यों हो पाती? उसकी खोपड़ी पर माँस तक नहीं है, लेकिन आप कहते हैं कि एकदम सच्ची पहचान होनी चाहिए। अंशुल की हत्या हुई है। हत्या किसने की है? यह रहस्य आप नहीं खोल पाते जबकि सुरक्षा और न्याय देने का ठेका आपने ले रखा है। बहुत सीधा-सा तर्क है जिस काम के लिए हम सौंपे गए हैं अगर उसे नहीं कर पाते तो उससे अलग हट जाना चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करते तो निठल्ले और बेईमान बनने से बच नहीं सकेंगे। क्या आपको मालूम है कि मैं असली अपराधी आपको मानता हूँ। विक्षिप्तता की

स्थिति में भी क्यों पत्नी ने पूछा था कि - "मरदह का दरोगा कहाँ है?" नैतिकता के आपके 'आदर्श राज्य' से बहिष्कृत होने के बावजूद अपना क्षत-विक्षत लहू-लुहान चेहरा लिए हम बार-बार लौट कर आएँगे आप सबको तहस-नहस करने। सत्ता और शक्ति के ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए आपके भी हाथ में कलम है और मेरे भी पास कलम है। आप मरे हुए शब्दों के गुलाम रखवाले हैं। अपराधियों द्वारा बनाए कानून के व्याख्याता भी नहीं हैं आप। आप शब्दों के मामूली क्लर्क हैं। मेरे पास कवि की कल्पना है और लुहार की भट्ठी। शब्दों का साथी मैं उन्हें मन मुताबिक जब, जहाँ जैसे चाहूँगा ढाल लूँगा। मेरी पत्नी ने नहीं, एक घायल माँ ने मुझसे पूछा था - "आप बदला लेंगे न"। खैर... इस समय अपनी भयानक मानसिक उथल-पुथल के बीच मैं चुप था।

मेरे वकील ने मुझसे कहा कि "स्टांप पेपर पर एक हलफनामा लिख दीजिए कि मेरा अपनी पत्नी से मधुर और निष्ठापूर्ण संबंध था और हम लोगों के बीच कभी कोई विवाद नहीं रहा।" भारतीय दांपत्य जीवन में इससे बड़ा झूठ मिलना मुश्किल है। मैंने कहा कि - "सिर्फ इतना लिखिए कि मेरा पत्नी से सामान्य संबंध था।"

- "यह साहित्य नहीं है भाईजान!" - वकील ने कहा। तब मैंने स्टांप पेपर पर लिखे झूठ पर हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रांगण में ऐसा असंख्य बार करना पड़ेगा। मैंने घृणा से थूक दिया। और जाकर सामने पेड़ के नीचे की जमीन पर लेट गया। थकान बहुत ज्यादा थी। मैंने आँखें बंद कर लीं। अंशुल की हड्डियाँ मेरे सामने रह-रह कर काँप जातीं -

कुत्तों और बिल्लियों को भी

कब मारा गया था इस तरह इस गाँव में

हाथों में दूध के गिलास लेकर

किसे खोज रही हो माँ

सूरजमुखी के फूलों में

फेंक दिया गया हूँ मारकर।

मृतात्माओं के इस प्रांगण में

क्या खोज रहे हैं आप सब

राख और हवा हो चुका हूँ पापा!

भयावह अट्टहासों और अनंतकाल तक चलने वाली

झूठ की इस अंत्याक्षरी में

हारना ही है आपकी नियति।

रेत के इस बवंडर में

चक्कर खाते हुए, कुछ भी नहीं आएगा आपके हिस्से

आपकी थकान रह जाएगी

मरीचिका की इस यात्रा में

हम अब कभी और कहीं नहीं मिलेंगे पापा!!

लखीमपुर जाने वाली एक बस की सीट पर मैंने अपने शरीर को रख दिया था। मेरे पास मित्रों का एक जमघट था लेकिन चंद ही काम आए। एक क्षत-विक्षत घर से निकल कर मैं पुनः अपने एकांत और निरापद मकान पर लौट आया इस प्रार्थना के साथ कि - "हे भगवान! मुफ्त के उपदेशकों से बचा सको तो जरूर बचाए रखना।"

https://www.hindiadda.com/kshama-karo-he-vats/